बिहार सरकार द्वारा सर्व शिक्षण संस्थाओं के लिये स्वीकृत

शान्ति सन्देश

...पक
...दतनारायण चौधरी

सम्पादक
चन्द्रधर प्रसाद नन्दक्यूलियार

वार्षिक मूल्य ४॥)

फरवरी, १९५९

प्रति अङ्क ।=)

विषय-सूची

क्रम-संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१	संत दादू दयाल के ईश्वर		१
२	मोक्ष के सुलभ साधन	सम्पादकीय	२
३	साम्प्रदायिकता का नाम छोड़ कर भजन कीजिए!	पूज्य स्वामी मँहींदास जी महाराज	३
४	सन्त और असन्त	श्री महावीर 'संतसेवी'	७
५	ईशस्तुति और नाम संकीर्त्तन	व्याख्याकार—महावीर 'संतसेवी'	१३

पृष्ठ २ का शेषांश

यह ब्रह्म विद्या सभी विद्याओं से श्रेष्ठ है। कहा गया है— 'ब्रह्म विद्या सर्व विद्या प्रतिष्ठाम्'

इस श्रेष्ठ विद्या की प्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये ?

कहा गया है वेदों में—'प्राप्य वरान्निबोधत श्रेष्ठ (वर) गुरुओं वा संतो के उपदेश द्वारा ज्ञान-लाभ करे। कठ० ३।१४। 'तद्विज्ञानार्थं स गुरु मे वाभिगच्छेत्' (मुण्डक० १।२।१२) उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिये वह [मुमुक्षु] सद्गुरु के पास विनय पूर्वक जाय।

'बिनु गुरु न होहिं ज्ञांना'। बिना गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता। इसी बात को शास्त्रों ने इस तरह स्पष्ट शब्दों में कहा है—"यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते तथा गुरुपदेशेन बिना कल्पकोटिभिः तत्त्व ज्ञानं न विद्यते।" अर्थात् जन्मान्ध व्यक्ति को जैसे रूप का बोध नहीं होता, वैसे ही गुरु के उपदेश बिना कोटि कल्पों में भी किसी को तत्त्व ज्ञान नहीं होता।

इसी के संत को सीधे शब्दों में सुनिए—

बिनु गुरु कोउ भेद न पावा। धरती ले आकास लौं धावा ॥

ऐसे गुरु के सत्संग से ही उस मार्ग का उपदेश मिलता है। इस तरह के सत्संग से चारो पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। इसी लिये सत्संग की महिमा बतलाते हुए गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं:—

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ पाई ॥
सो जानब सत्संग प्रभाउ। लोकउ वेद न आन उपाऊ ॥

संत चरण दास जी कहते हैं:—

तप के बरस हजार हो, सतसंगति घड़ि एक।
तौ भी सरवरि ना करै, सुकदेव किया विवेक ॥

संत दादू दयाल कहते हैं:—

नमो नमो निरंजनं नमस्कार गुरुदेवतः।
बन्दनं सर्व साधवा परनाम पारंगतः ॥

अर्थात् निरञ्जन को प्रणाम करता हूँ। गुरु देव की कृपा से अनादि अनन्त-निसीम निरंजन की समझ हुई, इस लिये गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ। जितने भी निरञ्जन को प्राप्त करने वाले साधु हैं उनको कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

(क्रमशः)

वर्ष—८ फरवरी—१९५९

संत दादू दयाल के ईश्वर

निर्मलतत, निर्मलतत, निर्मलतत ऐसा ।
निर्गुण निज निधि निरंजन जैसा है तैसा ॥टेक॥
उतपात आकार नाँहीं, जीव नाँहीं काया ।
काल नाँहीं, कर्म नाँहीं, रहिता रामराया ॥१॥
सीत नाँहीं, घाम नाँहीं, धूप नाँहीं छाया ।
बाव नाँहीं, बरण नाँहीं, मोह नाँहीं माया ॥२॥
धरणी-आकास अगम, चंद सूर नाँहीं ।
रजनी निसि दिवस नाँहीं, पवनाँ नहिं जाहीं ॥३॥
कृत्तिम घट कला नाँहीं, सकल रहित सोई ।
दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई ॥४॥

...त-

म् ॥

वधिनृणाम्।

पुरुषार्थ चतुष्टयम् ॥

ण-भंगुर है। इन क्षणभंगुर ...ाना दुर्लभ है। क्षण भंगुर ...प्रय— हरि के प्यारे—संत के ...र्य हैं। ऐसे संत के साथ आधे ...ण भी मनुष्य के लिये एक अमूल्य निधि ...त्संग से चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम ...एक साथ बनते हैं।

...शरीर की विशेष महत्ता पर जोर देते हुए ...ामी जी ने 'इसे साधन धाम मोक्ष कर द्वारा' कह ...इसका वर्णन किया है।

साधना करने की विशेष सुविधा है इस मानव-शरीर को। 'साधना' का अर्थ क्या है? सिद्धि या फल प्राप्ति के लिये जो काम किया जाय उसको साधना कहते हैं। इस दृष्टि से विचार करने से हमें यह मानना पड़ता है कि मनुष्य हर समय अपनी इच्छा के अनुसार कुछ-न-कुछ साधना करता रहता है। चाहे वह धन के लिये हो या विद्या के लिये या अन्य किसी वस्तु के लिये। इस प्रकार के साधन भौतिक हैं। भौतिक संसार से अलग होकर मोक्ष के लिये जो आध्यात्मिक साधना की जाती है उसी को सच्ची ...ाधना के रूप में जानकारों ने माना है।

यहाँ यह नहीं मान लेना चाहिए कि भौतिक संसार से अलग होने का तात्पर्य यह है कि संसार का त्याग कर मनुष्य सन्यासी हो जाय या लोक संग्रह के कार्यों से विरत हो जाय या कि किसी प्रकार का कर्म करे ही नहीं। लोक संग्रह इस तरह करें कि वह परलोकोन्नति का साधन बन जाय। वेद में इसको इस तरह समझाया गया है:—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥
(यजुर्वेद ४०।१४)

अर्थात्, विद्या (ज्ञान) और अविद्या (ज्ञानेतरकर्म) दोनों को जो साथ-साथ काम में लाता है, अर्थात् न ज्ञान की उपेक्षा करता है और न कर्म की, वह कर्म के द्वारा मृत्यु को पार कर ज्ञान के द्वारा अमरता को प्राप्त करता है।

यहां बहुत थोड़े में बतला दिया गया है कि मृत्यु को पार करने के लिये कर्म की आवश्यकता है। मृत्यु को पार करने के लिये ईश्वर को प्राप्त करना ही पड़ेगा।

इसी लिये उपनिषद् (स्वयं उपनिषद शब्द का अर्थ है—गति के द्वारा अच्छी तरह और नजदीक से परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना 'उप' यानी समीप से अभिन्न रूप में ब्रह्म तत्त्व का साक्षात्कार। 'नि' यानी अच्छी तरह बिना किसी कोर-कसर के माया या द्वैत-प्रपञ्च का नाश। 'षद्' का अर्थ है गति। अपने अन्दर चलना। ज्ञान, प्राप्ति, अवसादन या विध्वंस भी इसके अर्थ हो सकते हैं।) कहती है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय।— श्वे० ३।८। शुक्ल यजु०।

अर्थात् परमात्मा को जानकर ही मुमुक्षु यानी मोक्ष की इच्छा रखने वाला मृत्यु को पार करता है, कल्याण के लिये आत्मज्ञान के सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है।

(शेषांश आवरण के द्वितीय पृष्ठ पर)

साम्प्रदायिकता का भाव छोड़ कर भजन कीजिए

पूज्य स्वामी मेंहीं दास जी महाराज

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

मुझे गोस्वामी तुलसी दासजी महराज की एक चौपाई याद आती है। वह है—

"सन्त उदय सन्तत सुखकारी।
विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥"

सन्तों का प्रकट होना सदा सुख देने वाला है। जिस तरह संसार में चन्द्रमा और सूर्य का उदय होना। सन्त लोग सदा से सुख पहुँचाये, अब भी जो हैं वे सुख पहुँचाते हैं और जो होंगे वे भी सुख पहुँचावेंगे। संतों से लोगों को सुख होता है—कल्याण होता है। सन्तगण साधारण सुख—विषय भोगजनित सुख पहुँचाते हैं सो नहीं, ये तो अपने ही आते हैं। इस सुख को बिल्कुल त्यागने को भी नहीं कहते हैं। संसार में रहकर जितना सुख लेना चाहिये—जिसके बिना नहीं बने उतना लेने को कहा। विशेष लेने से तुम संसार में बाँधे जाओगे। क्योंकि विषय भोग रहता नहीं है और न इससे संतुष्टि होती है। जीव के बहुत जन्म हुए हैं। सब जन्मों में भोगों को भोगा है। इसमें तृष्णा की वृद्धि होती है, संतुष्टि नहीं। इसलिये संतो ने कहा कि जतना विषय लेना अनिवार्य है, जिसके बिना बने नहीं, उतना विषय लो। विशेष मत लो, उसमें घोर

"अनविचार रमणीय महा संसार भ...

संसार में बिना विचारे सुन्दर-सुन्दर... को लो और बिना तृप्ति के संसार से चले जाओ।

एक आदमी को धन का बहुत लालच... उसको मालूम हुआ कि तुम्हारे पास जितनी जमीन है उसको बेचलो तो उतने ही रुपये से दूसरी जगह बहुत जमीन मिलेगी। यह जानकर वह अपनी जमीन बेचकर वहाँ गया। वहाँ के जमीन वाले ने रुपये लेकर उससे कहा—तुम दिनभर में जितनी जमीन में घूमकर सायंकाल मेरे पास आ सको उतनी जमीन तुम्हारी हो जायगी। वह लालच के मारे जमीन की ओर बढ़ा। जैसे-जैसे वह आगे जाता वैसे-वैसे उसको अच्छी जमीन मालूम पड़ती। वह आगे बढ़ता गया, जब सूर्यास्त होने के लिये थोड़ा समय बचा तो उसको याद आया कि शाम तक लौटकर जमीन वाले के घर पर पहुँचना है और दिन थोड़ा है। यह सोचकर वह उधर से लौट पड़ा। धीरे-धीरे चलने से शामतक पहुँच नहीं सकता। इसलिये उसने दौड़ लगाना शुरु किया। दौड़ते-दौड़ते संध्या होते-होते जमीनवाले के घर पर

...किन्तु तुरन्त बेहोश होकर वह गिर पड़ा
...।

...सब लोगों की है। संसार की ... बड़ा लालच होता है। लेते-लेते ... ठिकाना नहीं। और लेने की हवस में ... करने में शान्ति नहीं आयेगी। अपने ... संतुष्ट करो। (He who grips much ...ttle.) बहुत की आकांक्षा में थोड़ा भी नहीं ...। अपने जीवन को खाली मत बनाओ। ... सुख मिलता है वह अल्प है, दूसरी ओर ... सन्तों ने कहा—संसार की दूसरी तरफ तुम्हारा ... बाहर का देखना बन्द कर अन्दर देखो। ...ा समुद्र है। देह देखने को साढ़े तीन हाथ है। ...ला से नीचे कारखाना है और इसके ऊपर कारखाना ...हेत और भी विशेष है। इसकी थाह नहीं मिलती।

"कबीर काया समुद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय॥"

बहुत देर तक डूबने वाले को मरजीवा कहते हैं। जो शरीर रूप समुद्र में डूबता है, वह अनमोल पदार्थ लाता है। कबीर साहब अपनी निस्बत कहते हैं—

"मैं मरजीवा समुद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक॥"

इस तरह उनको ज्ञान हुआ। साहित्यिक लोग कहते हैं कि कबीर साहब को रामानन्द स्वामी का संग था, बहुत सूफियों का संग था, इसलिये उनको इस तरह का ज्ञान था। उनका कहना भी ठीक ही है। लेकिन कबीर साहब ने स्वयं क्या कहा है सो सुनिये—

मैं मरजीवा समुद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक॥"

यह काया रूप समुद्र है। इसका थाह नहीं है। बाबा नानाक ने कहा है—

"सागर महि बूंद बूंद महि सागर, कवणु बुझै बिधि जानै।
उतभुज चलत आप करि चीनै आपै तत्तु पछानै॥
ऐसा ज्ञान बिचारै कोई। तिसतै मुकति परमगति होई॥"

समुद्र में बूंद है, बूंद में समुद्र है, इसकी विधि को कौन जाने? यह आश्चर्य चरित्र है। अपने से जो कोई करेगा वह अपने से पहचानेगा और नतीजा यह होगा कि, वह स्वयं क्या है, उसको वह पहचानेगा। पहचानने से क्या होगा? तो कहा—"परमगति होई"। "परमगति" ऐसी है जो परम सुख, संतुष्टि और शान्ति देने वाली है। कबीर साहब कहते हैं—

"बूंद समानी समुद में, यह जाने सब कोय।
समुद समाना बूंद में, बूझै बिरला कोय॥"

विश्व ब्रह्माण्ड समुद्र है और एक-एक शरीर बूंद है। संसार में शरीर है, इसको सब कोई जानते हैं। इस शरीर में समुद्र है, इसको कोई-कोई जानते हैं। ऐसा कोई कैसे जानेगा? अपने अन्दर गो... लगाने से जानेगा। इसमें जितनी दूर तक तेजी से जाओ उतनी दूर तक आनन्द लो। वह तुम्हारा अमानत उसमें खिआनत नहीं होता। जन्म-जन्म पीछा करने वाला है। तुम्हारा यह अन्तर गमन का कर्म बढ़ते-बढ़ते परम सिद्धि को प्राप्त करा देगा। इसके आरम्भ का नाश नहीं होता। किसी तरह कोई इस धन को लूट नहीं सकता—छीन नहीं सकता। यदि साधक गिरता भी है, तबभी उसका उतना जमा रहता है। इसी को श्रीमद्भगवद्गीता में योगभ्रष्ट कहा है।

"दिन-दिन बढ़ै सवाई।
रामधन कबहुँ न लागे काई॥"

ईश्वर का परम भक्त बनने के लिये संत लोग

कहते हैं। और कहते हैं कि इस तरह उससे मिल जाओ जैसे जल में जल।

"ज्यौं जल में जल पैठन निकसे, यों दुरि मिला जुलाहा"

कबीर साहब।

"जलतरंग जिउ जलहिं समाइआ,

त्यौं ज्योती संग ज्योति मिलाइआ"

गुरुनानक साहब।

परमात्मा का स्वरूप संत लोग बताये हैं—

"रामस्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धिपर।

अविगत अकथ अपार, नेति-नेति नित निगम कह॥"

गो० तुलसीदास।

बाबा नानक ने बताया हैं—

"अलख अपार अगम अगोचरी ना तिसु काल न करमा।

जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाव न भरमा॥

साचे सचिअ रविटहु कुरबाणु।

ना तिसु रूप वरनु नहि रेखिआ साचे शबदि नीसाणु॥"

उसकी स्थिति है. उस पर अपने को न्योछावर कर दो-बलीदान कर दो। शरीर का गला कटाने से कुछ नहीं होगा। शरीर में तुम फँसे हो, शरीर से निकल कर उनके चरणों पर गिर पड़ो।

संत लोग स्थूल उपासना से आरम्भ करते हैं और फिर सूक्ष्म सगुण फिर उनसे भी आगे निर्गुण निराकार को ग्रहण करने को कहते हैं।

"हिय निर्गुण नयननिह सगुण, रसना राम सुनाम।

मनहु पुरट सम्पुट लसत, तुलसी ललित ललाम॥"

गो० तुलसी दासजी।

तुलसी दास जी को राम नाम में प्रेम था। किसी को शिव में, किसी को वाह गुरु में, तो अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुकूल जपो। सगुण सोना है, फिर उसमें रत्न निर्गुण है। सोना भी ... लो। आरम्भ जपसे करो और ... कि केवल जप है और आप। फिर ...

"मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा ...

मूल नाम गुरु वचन है, मूल ... ..."

कबीर ...

गो० तुलसी दास जी को गुरु और ... सगुण राम दोनों में प्रेम है। कबीर साहब और ... नानक साहब को सगुण के लिये गुरु रूप ... वे कहते हैं—

"गुरु की मूरति मन महि धिआनु।

गुरु कै सबदि मंत्र मनु मानु॥"

—गुरुनानक ...

साम्प्रदायिकता का भाव छोड़ो कोई राम ... कोई कृष्ण का, कोई देवी का, कोई अक्षर लिखकर उसका ध्यान करते हैं। सब एक ही चीज है—स्थूल ही स्थूल। इसके बिना सूक्ष्म ध्यान हो ही नहीं सकता है। स्थूल ध्यान के बाद सूक्ष्म ध्यान होता है। जिसको कहा है—

"गगन मंडल के बीच में, तहवाँ झलकै नूर।

निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु ...॥"

कबीर साहब।

गो० तुलसी दास जी ने कहा—

"श्रीगुरुपद नखमनिगन जोती।

सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥

दलन मोहतम सो सुप्रकासू।

बड़े भाग उर आवहिं जासू॥

सूझहिं रामचरित मनि मानिक।

गुप्त प्रकट जहँ जो जेहि खानिक॥"

यहाँ गुरु से जानो यौं करो। यहाँ सूक्ष्म ध्यान, स्थूल सगुण साकार और निराकार हुआ। इसके बाद है—ध्वन्यात्मक-शब्द ब्रह्म की उपासना, यानी नादानुसन्धान जो सूक्ष्म सगुण रूप की उपासना ठीक-ठीक करता है वही शब्द ब्रह्म को प्राप्त करता है। उसे पकड़ कर परमात्मा तक जाता है। इसके लिये अपने को बहुत पवित्र बनाना होगा।

"सूचे माँहे साधु समावे विरले सूचाचारी"

अपने को पवित्र बनाने के लिये झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, नशा मत खाओ-पीओ, व्यभिचार मत करो, हिंसा नहीं करो मत्स्य मांस नहीं खाओ। मनुष्य शरीर और जिस पशु का मांस खाया जाता है—दोनों में पवित्र कौन है ? मनुष्य का शरीर सबसे विशेष पवित्र है। इसमें पवित्र परमाणु हैं, पशुओं के शरीर में ऐसे पवित्र परमाणु नहीं हैं। इसलिये पवित्र परमाणु में अपवित्र परमाणु नहीं मिलाओ। सभी भोजन में अपनी-अपनी तासीर होती है। अपनी-अपनी तासीर नहीं हो तो भाँग पीने से उसका असर नहीं होता। शुद्ध भोजन की जड़ है—अपनी कमाई का खाओ। और मांस-मछली नहीं खाना तो उसकी डाल-पात है। यदि भोजन का असर नहीं होता तो डाक्टर रोगी को क्यों बताते कि यह खाओ और वह न खाओ। कबीर साहब नित्य कमाते थे और नित्य खाते थे। बड़े संतुष्ट थे।

"रूखा फीका खायकर, ठण्डा पानी पीव।
देख बिरानी चूपड़ी, मत ललचावे जीव ॥
खुश खाना है खीचड़ी, माहिं पड़ा टुकलोन।
मांस पराया खायकर, गला कटावे कौन ॥"

कबीर साहब।

जबतक ऐसी संतुष्टि नहीं आती, तबतक ऊँचे तक कोई नहीं चढ़ता। कबीर साहब परम संतुष्ट थे। व कमाते थे और खाते थे। जैसे आज भी वे जीवित हैं। यह है अमर जीवन। कमाई करते अपने को विषयों में इतना मत गड़ाओ कि निकलना मुश्किल हो। पंचपापों से बचो। यदि कोई पाप हो जाय तो परमात्मा से प्रार्थना करो कि अब मुझसे ऐसा पाप न हो। केवल प्रार्थना ही नहीं करो स्वयं मुस्तैदी के साथ रहो। पंच पापों से बचकर रहो तो आप गरीब होने पर भी प्रतिष्ठावान्—पूज्यमान हो जायँगे। यदि समाज ही ऐसा बन जाय तो सिपाही की कोई जरूरत नहीं। पुलिस और कचहरी सब बेकाम हो जाँय। आपके देश का खर्च भी कम हो जायगा। ऐसा मेल होगा जिसके आगे तोप, बम-गोला भी फेल हो जायगा। एक कहानी है कि कोई सात भाई थे। आपस में बड़ा मेल था। एक दिन सब कोई जंगल की ओर लकड़ी लाने गये। जंगल में पहुँच कर बूढ़े ने किसी को पानी लाने को कहा, किसी को लकड़ी लाने को कहा, किसी को चूल्हा जलाने कहा। किंतु पास में न तो चावल, न दाल न और कुछ। बूढ़े पिता की आज्ञा पा सभी लड़के अपने-अपने काम पर चले गये। बूढ़ा एक वृक्ष के नीचे बैठकर रस्सी बनाने लगा। उस वृक्ष पर एक प्रेत रहता था। उसने बूढ़े से कहा कि रस्सी क्या करोगे। बूढ़े ने कहा—तुम्हीं को बाँधूगा। प्रेत ने सोचा इनको आपस में बड़ा मेल है, इसलिये उन्होंने कहा—मुझे मत बांधो, मैं तुम्हें बहुत सा धन देता हूँ। यह कहकर प्रेत ने उसे बहुत धन दिया। पिता-पुत्र सभी प्रसन्न हो धन लेकर घर लौट आये। उस बूढ़े के पड़ोस में एक आदमी रहता था उसको भी सात लड़के थे। उसने

देखा कि बूढ़ा पहले गरीब था, अब उसके पास धन कैसे [illegible] गया। उसने बूढ़े के पास जाकर पूछा। बूढ़े ने जंगल की सारी कहानी उससे कह सुनाई। वह पड़ोसी भी अपने सातों पुत्रों को संग लेकर जंगल गया और उसी बूढ़े की तरह उस वृक्ष के नीचे बैठ कर किसी लड़के को लकड़ी, किसी लड़के को पानी, किसी लड़के को चूल्हा सुलगाने कहा और स्वयं रस्सी बाँटने लगा। इन लोगों को आपस में मेल नहीं था। किसी लड़के ने पिताकी बात नहीं मानी। सभी बोलने लगे कि चावल-दाल का पता नहीं और चूल्हा फूँक-कर, लकड़ी लाकर, पानी लाकर क्या होगा। प्रेत ने पूछा यह रस्सी क्या करोगे [illegible]आगा है, सत [illegible] बांधूँगा। प्रेत ने कहा—तुमको [illegible] ध[illegible] है। मुझको क्या बाँधोगे? भ[illegible] सबको अभी मार दूँगा। बेचारा[illegible]न की [illegible]

आप लोगों ने मेल से रह[illegible] काम किया कि बहुत ताकत वाली हुकूमत देश से निकाल बाहर किया। आज अपनी [illegible] सब कोई मेल से रहिये। सद्भाव[illegible] संतबाणी का पाठ कीजिये। खुशी [illegible]

प्रेषक—श्री [illegible]

सन्त और असन्त

श्री महावीर 'संतसेवी'

शान्ति स्थिरता वा निश्चलता को कहते हैं। शान्ति को जो प्राप्त कर लेते हैं, सन्त कहलाते हैं। अथवा उपनिषद् वाक्यानुकूल, भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशया। क्षियन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ की स्थिति जिन्होंने प्राप्त कर ली है, वे सन्त कहलाते हैं।

भारत अध्यात्म प्रधान देश है। यहाँ अतीत-काल से ही सन्त महात्मागण जलपद्मवत प्रादुर्भूत होते रहे हैं। साथ ही यह बात भी बिल्कुल सत्य है कि जिस जल में कमल उत्पन्न होता है, उस जल में जोंक भी। क्योंकि जगतकर्त्ता की सृष्टि ही सापेक्षता से आपूरित है। इस हेतु दोनों के गुण-दोष सर्वत्र पृथक्-पृथक् हो रहे हैं। भगवान श्री राम के शब्दों में यदि कहा जाय कि 'संत–विगत काम मम नाम परायण। शान्ति विरति विनती मुदितायन" होते हैं, तो फिर उन्हीं के शब्दों में "काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन" असन्त के लिये कहना अनिवार्य हो जाता है। कमलवत सन्त अपने यश-सौरभ से चतुर्दिक सुरभित करते हैं, जन-गण को मर्यादित रखते हैं—शोभा देते हैं, सबको प्रसन्न एवं सुखी रखते हैं, तो जोंकवत असन्त जनता जनार्दन को उत्पीड़ित करता है; तरह तरह के कष्ट देता है और उनके शोणित का शोषण करता है। गो[illegible] तुलसी दास जी अपने स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

"संत उदय जग सन्तत हितकारी।
बिश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥"

और—

"दुष्ट उदय जग आरत हेतु।
यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु॥"

संत और असन्त के सम्बन्ध में देखा भी [illegible] जा सकता है कि जिस तरह नीरोत्पन्न नीरज नीर [illegible] ऊपर रहता तो जोंक जल के अंदर रहता है। इ[illegible] तरह सन्तजन संसारासक्ति से ऊपर उठे रहते हैं [illegible] दुष्ट जन संसार में आसक्त—डूबा रहता है। संत[illegible]

...हीं चूकते, तो दुष्ट भी ...में अचूक होते हैं। संत को ...तो दुष्ट को अंधकार कहने में ...नहीं होगी। जैसे घूघूर को निविड़ अमानिशीथ ही परम प्रिय है, पूर्णि... वेला नहीं। इसी तरह दुष्टों को ...कार में पड़ा रहना ही भाता है, संतों का ...नहीं। गो० तुलसी दास जी के शब्दों में —साधु अमृत, चन्द्रमा और गंगा के ...ष, अग्नि और कर्मनाशा नदी के ...' के संग सदृश ही दुष्टों और ...र संग है। दुर्जनों का संग कभी भी अछूता नहीं रहता। इसलिये सभी संतों ने ... के संग से प्रथक रहने की ही अनुमति दी है—

"कबीर संगति साध की, हरै और की व्याधि।
संगति बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि॥
कबीर संगति साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड भोजन मिलै, साकट संग न जाय"

संत कबीर

"छाड़ मन हरि विमुखन को संग।
जाके संग कुबुद्धि उपजै, पड़त भजन में भंग॥"

सूरदास जी

संत सुन्दर दास जी कहते हैं सर्प डँसे, बिच्छु डंक मारे, सिंह खा जाय, या हाथी के पैर के तले दबकर मत्यु हो जाय या अग्नि में जलकर वा पानी में डूबकर वा पर्वत से गिरकर किसी तरह मृत्यु हो जाय तो कोई चिन्ता की बात नहीं, लेकिन दुष्टों का संग किसी भाँति भी अच्छा नहीं।

"सर्प डँसै सो नहीं कछु तालुक,
बिच्छु लगै सो भलो करि मानो।
सिंहहु खाय तो नहि कछु डर,
जौं गज हानत तौ नहि हानो॥
आगि जरो, जल बूडि मरो,
गिरि जाय गिरो कछु भय मत आनो।
सुन्दर और भले सब ही,
पर दुष्टक संग भलो जनि जानो॥"

सुन्दर दास जी

...तु परम भक्तिन मीराबाई कहती हैं—

"मनुआं राम नाम रस पीजै।
तजि कुसंग सतसंग बैठि नित, हरि चरचा सुनि लीजै॥"

गो० तुलसी दास जी के शब्दों में—

"सुनहु असन्तन्ह केर स्वभाऊ।
भूलेउ संगति करिय न काऊ॥
इन्ह कर संग सदा सुखदाई।
जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई॥"

गो० तुलसी दास जी

दुष्टों की करतूत देख उनसे ऊबकर कहते हैं, मुझे नरकवास हो सो अच्छा है, लेकिन दुष्टों का संग विधाता नहीं दे।

"बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देहिं विधाता॥"

खलजन का यह सहज स्वभाव है कि वह दूसरे की उन्नति को अपनी फूटी आँखों देखना नहीं चाहता। अन्यों का अभ्युदय और वैभव देखकर बिना अग्नि के ही वह जला करता है। उनकी आभ्यन्तरिक इच्छा सदा यही रहती है कि कब अन्यों का अनिष्ट और पराभव हो।

गो० तुलसी दास जी ने बड़े मजे में कहा है—

खलन्ह हृदय अति ताप बिशेषी।
जरहि सदा पर सम्पति देखी॥

जहँ कहिं निन्दा सुनहिं पराई।
हरषहिं मनहु परी निधि पाई॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई।
स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू की देखहिं बिपती।
सुखी भये मानहु जग नृपती॥

सर्व साधारण के साथ दुष्टों का ईर्ष्या व्यवहार तो सदा से रहा ही है, साथ ही संत महात्माओं के साथ भी उन्होंने कम धृष्टता नहीं की है। सहजोबाई, जो संत चरणदास जी महाराज की शिष्या थीं, कहती हैं—

इड़ा पिंगला ऊपर पहुंचे, सुखमन पाट उघारा।
पीवन लगे सुधा रस जबही, दुर्जन पड़ी बिडारा॥"

बौद्ध कालिक एक अत्यन्त रोमांचकारी कहानी है कि जब भगवान बुद्ध के सिद्धत्व की प्रख्याति दूर-दूर तक हो गई और लोगों ने उनको तथा उनके भिक्षु संघ को पूज्य दृष्टि से देखने, उन्हें चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लान प्रत्यय देकर सत्कारादि करने लगे; तो दूसरे मतके साधु लोग, जिनका कोई आदर-सत्कारादि नहीं करते, बौद्ध भिक्षुओं से ईर्ष्या-भाव कर मनही मन जलने लगे। उनकी यह जलन दिनानुदिन बढ़ती ही गई। एक समय की बात है कि भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथ पिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। दूसरे मत के साधु लोग (जो उनसे जला करते थे) जहाँ सुन्दरी नामकी परिव्राजिका रहती थी, वहां जाकर "बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहिं महा अहि हृदय कठोरा" को चरितार्थ करता हुआ (उन दुष्टों ने) कहा—बहन! मुझ भाइयों की तुम कुछ भलाई कर सकती हो! बेचारी सरला सुन्दरी दुष्टों की दुष्ट प्रकृति से बिल्कुल अन भिज्ञ थी। अप[...]प्राण हैं, संत समान ही दूसरे के हृदय को [...] "भाई! मैं किस योग्य हूँ, मुझसे [...] हो सकती है? यदि मुझसे आप [...] हो त मैं अपना जान देने को तैयार हूँ [...] ने कहा—तो बहन, त्वरित जेतवन चलो। भो[...] सुन्दरी जेतवन के लिये तुरत चल पड़ी। [...] कहीं एकान्त पाकर, उन दुष्टों ने सुन्दरी का मा[...] कर जेतवन के समीप एक गड्ढे में उसकी लाश— छिपा रखा और कोशलराज प्रसेनजित से [...] बोले-महाराज! भिक्षु संघ की सुन्दरी परिव्राजि[...]क आजकल दिखाई नहीं देती है। प्रसेनजित ने कहा—तो इसकी खोज कीजिये। दुष्ट साधुओं ने [...] के निकट जाकर उस गड्ढे से उक्त लाश को निकालकर बांस के ठट्ठर पर उठाकर श्रावस्ती लाया और उसे एक गली से दूसरी गली और एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर ले जाकर लोगों को दिखाने लगे और यह कहकर भड़काने लगे कि भाइयो! बौद्ध भिक्षुओं (शाक्य पुत्रों) की करतूत देखो! ये बौद्धभिक्षु कितने निर्लज्ज हैं, दुःशील हैं, पापी हैं, झूठे हैं, व्यभिचारी हैं, लोग इन्हें बड़ा महात्मा, धर्मात्मा, संयमी, ब्रह्मचारी, सच्चे शीलवान, पुण्यवान समझ बैठे हैं। न तो इनमें श्रमणभाव है और न निष्पापता (ब्राह्मण)। इनके श्रमणभाव और निष्पापता सभी नष्ट हो चुके हैं। व्यभिचार करने के बाद स्त्री की हत्या कर डालना कितना जघन्य कर्म है? इस प्रकार दुष्ट साधुओं ने झूठा प्रचार कर बौद्ध भिक्षुओं के प्रति लोगों में अश्रद्धा पैदा कर दी।

कुछ समय श्रावस्ती के लोग बौद्ध भिक्षुओं को देखकर उनसे बहुत बुरा सलूक करते, उन्हें असभ्य, निर्लज्ज, पतित आदि कह दुत्कारते, धिक्कारते और

...ते कि व्यभिचार करने के बाद ...ना उचित नहीं था।

...न परिस्थिति को देख कुछ बौद्ध भिक्षु ...पास गये और उनका अभिवादन कर ...किया कि भन्ते! आजकल श्रवास्ती के लोग ...को देखकर उन्हें छोटी-नीची बातें कहते हैं, ...याँ देते हैं, पुकारते और धिक्कारते हैं, कहते हैं ...भिक्षु निर्लज्ज हैं... व्यभिचार करने के बाद ...के .....

...भगवान ने कहा भिक्षुओ! यह बात बहुत ...तों ... नहीं रहेगी। एक सप्ताह भर रह उसके बाद ... जायगी। और जो भिक्षुओं को देखकर ....गालियाँ दें, उन्हें तुमलोग इस गाथा से उत्तर दो— "झूठ बोलने वाले नरक में जाते हैं और वे भी जो कि करके कहते हैं हमने नहीं किया" मृत्यु के बाद परलोक में दोनों की समानगति होती है।

तब जो कोई बौद्ध भिक्षुओं को देखकर गालियाँ देते तो बौद्ध भिक्षु उपरोक्त गाथा कहकर उत्तर देते। बौद्ध भिक्षुओं के मुंह से इस तरह की बातें सुनकर लोगों के मन में हुआ कि इन भिक्षुओं ने ऐसा कर्म नहीं किया होगा। ये लोग बराबर सौगन्ध खाते हैं। धीरे-धीरे एक सप्ताह में वह बात समाप्त हो गई। लोगों को विश्वास हो गया कि बौद्ध भिक्षुओं का यह काम नहीं है। भिक्षुओं के प्रति लोगों में पुनः पूर्ववत श्रद्धा पैदा हो गई और फिर वे लोग उनका आदर सत्यकारादि करने, श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखने, चीवर, पिण्डपात, शयनासन आदि इन्हें देने लगे। दुष्टों के मुंह में अमिट कालिमा लगी। तुलसी दास जी ने ठीक ही कहा है :—

"तुलसी जे कीरति चहहि, पर की कीरति खोइ।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटहि न मरिहैं धोइ॥"

दुष्टों ने महायोगी श्री मछन्दर नाथ जी पर व्यभिचार का दोष मढ़ा था, किंतु सन्तवाणी के अनुकूल "साँच-साँच सो साँच है, झूठ काँच को काँच" ही सिद्ध हुआ।

संत कबीर साहब को भी दुष्टों ने कम नहीं सताया। गंगाजी में डुबोया, बोरे में बाँधकर कुएँ में गिरवाया, लोहे के जंजीर में देकर चुल्हे पर चढ़ाकर उनको उबाला, लोहे की जंजीर से बाँधकर हाथी के पैर तले दबवाया आदि। किंतु क्या हुआ? सोने को अग्नि में जितना जलाया जाता है उतना ही वह खरा उतरता है, उतनी ही उसकी दीप्ति निखर उठती है। संत कबीर साहब भी ठीक उसी तरह देदीप्यमान और खरे उतरे। साँच में आँच क्या? उन्हें किसी तरह की तनिक भी आँच न लगी।

खालसा इतिहास को पढ़कर रोमांच हो उठता है कि दुष्टों ने उनलोगों के साथ कितना अत्याचार किया। सात साल और नौ साल के दो अबोध बच्चों को दीवार में चुन डाला। गुरु अर्जुन देव और बन्दा वीर के ऊपर उन आततायियों ने जितनी बेरहमी की, वह वर्णातीत है।

परम भक्तिन मीराबाई को हलाहल पान करवाया। संत पलटू साहब को जीते जी जला डाला। ऋषि दयानंद जी को उनके पाचक द्वारा दूध में विष डलवा कर इनका प्राणान्त करवाया।

पौराणिक कथा से लोग अनभिज्ञ नहीं हैं, जानते ही हैं कि प्रह्लाद जैसे भक्त के साथ उनके दुष्ट पिता ने कितना अन्यायपूर्ण निष्ठुर व्यवहार किया था।

केवल अपने ही देश की यह बात नहीं है।

विदेशों में भी जहाँ कहीं सत महात्मा, पैगम्बर आदि हुए सभी के साथ दुर्जन इसी तरह पेश आये। मंसूर को शूली की सजा दी। सुकरात को गरलपान करवाया गया। शम्श तबरेज की खाल खिंचवाई गई और ईसामसीह को क्रासपर ठोका गया। कितना गिनाया जाय? दुष्टों ने सन्तों के साथ तनसे मनसे और वचन से जिस तरह और जितना भी बुरा सलूक किया, संतगण सभी को सहते गये।

"करगस सम दुर्जन वचन, रहे सन्तजन टारि।
बिजली पड़े समुद में, कहा सकेगी जारि॥"

संत कबीर साहब

"बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे॥"

गो० तुलसी दास

आदि संत भगवान बुद्ध स्वयं अपनी निस्वत कहते हैं—

"अहं नागो व संगामे चापतो पतितं सरं।
अति वाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलोहि बहुज्जनो॥

धम्मपद गाथा ३२०

अर्थात् जैसे युद्ध में हाथी धनुष से छोड़े वाणों को सहन करता है, वैसे ही मैंने कटु वाक्यों को सहन किया। क्योंकि संसार में दुःशील लोग ही अधिक हैं।

दुष्टों की कृतघ्नता और सन्तों की सहिष्णुता एवं उदारता का वर्णन कोई कहाँ तक कर सकता है। दोनों अपने-अपने गुणावगुन में समुद्रवत अगाध है।

"खल अघ अगुण सन्त गुण गाहा।
उभय अपार उदधि अवगाहा॥

सन्तों का हृदय देखिये कितना विशाल, गम्भीर क्षमावान्, उदार और सहिष्णु है। क्रास पर ठोके जाने पर भी ईसामसीह उन दुष्टों के रक्षार्थ ईश्वर से प्रार्थना करते हैं Fa[illegible] they do not know wh[illegible] ऐ मेरे पिता! तू इनको क्षमा क[illegible] ये क्या कर रहे हैं।

प्राण हैं, सत [illegible]

सन्त पलटू साहब को दुष्टों ने [illegible] अग्नि में जला डाला था, फिर [illegible] शरीर से जगन्नाथ जी में जाकर [illegible] बहुतों ने उनके दर्शन किये। उनके [illegible] अगाधता और क्षमाशीलता देखिये— [illegible] की मृत्यु सुनकर दुखित होते हैं [illegible] जीवी होने की कामना करते हैं। [illegible]

शान्तिः !!!

क्या मैंने लिख[illegible] प्रकाशित क[illegible]

"सुनिके निन्दक मर गया, पलटू दिया रो[illegible]।
निन्दक जीये जुगन जुग, काम हमारा होय[illegible]

महर्षि मेंहीं जी महाराज पर भी दुष्टों [illegible] आक्रमण न हुआ। इन पर तरह-तरह के जि[illegible] षड़यन्त्र रचे गये, अवर्णनीय है। फिर भी प्रसंगवश एक घटना का उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। आततायियों ने उनकी भी निर्मम हत्या करने और अग्नि में जलाने की भारी कुचेष्टा की थी। सन् १९३९ ई० की बात है कुछ सत्संगी महाशयों ने अपने यहाँ सतसंग के हेतु महर्षि जी को आह्वान किया और उनके ठहरने के लिये एक बगीचे में बहुत सुन्दर आयोजन किया। सत्संगी महाशयों ने सोत्साह बड़ी धूमधाम के साथ मण्डप सजाया था। रात के समय फूल-पत्तियों एवं रोशनियों से मण्डप जगमगा रहा था। किंतु यह कहावत भी अति-प्रसिद्ध है कि—'चोरहिं चाँदनि रात न भावा'—दुष्टों को वह सजावट, वह धूमधाम कहाँ तक सुहावना लग सकता था, उनको तो गो० जी की 'उजड़े हरष विषाद बसेरे' वाली बात को अपनी दुष्ट प्रकृति के द्वारा क्रियात्मक

। रात का समय था। [illegible]रण सभी सज्जन निद्रादेवी [illegible]ा में पड़े थे। महर्षि जी भी [illegible]द्रावस्था में थे—सर्व साधारण [illegible]ायः कहा करते हैं कि 'को जाने [illegible]न मैं तो कहता हूँ संतों की गति [illegible]क्योंकि 'संत भगवंत अन्तर [illegible]मति बिमल कह दास तुलसी'। [illegible]ल जी के शब्दों में —'दादू जानै [illegible] गति गोई। यदि संत तुलसी साहब [illegible] चाहेंगे तो कहेंगे कि—'चितवत [illegible]गी सोवत कपट कपाट'। सोये थे [illegible]नी गति वे आपही जानें। लेकिन लौकिक [illegible] वे सोये ही थे। उनको सोया हुआ जान [illegible]ा पाकर दुष्टों ने उस कुटिया में आग लगा दी। [illegible]क घर के दरवाजे के सामने ही—कि जिससे वे घर [illegible] बाहर न निकल सकें। किंतु प्रभु की मौज कुछ और [illegible]ो थी। या संतों की लीला ही अपार है। दुष्टों का स्वार्थ सिद्ध न हो सका। महर्षि जी अपने आसन पर उठ बैठे और लोगों को जगा एवं जगवा कर घर से बाहर निकल पड़े। धीरे-धीरे अग्नि ने अपना प्रचण्ड [illegible]प धारण किया। पावक की प्रचण्ड ज्वाला देख बहुत लोग इकट्ठे हो गये। देखते-ही-देखते कुटिया अग्निमय होकर धराशायी हो गई। लोगों की अधिक भीड़ देखकर महर्षि जी एक दूसरी ओर थोड़ी दू[र] पर जाकर खड़े हो गये। दुष्टों ने देखा कि वहाँ मेरी दाल गल न पाई। अग्निदेवी की गोद से तो वे बाल-बाल बच गये। अब कुछ दूसरा ही यत्न कर उनकी इस लीला को यहीं क्यों न समाप्त कर दी जाय। यह विचार कर, शायद यह भी विचारा हो कि इस अग्नि-काण्ड के हो-हल्ले में किसको कौन देखता है? एक हथियार लेकर जहाँ महर्षि जी अकेले खड़े थे — पर प्रहार करने के लिये उनकी ओर बढ़ा। लेकिन जिनके ऊपर अनन्त भुजवाला रक्षार्थ खड़ा है, उनको दो भुजवाला—'अज्ञ अकोविद अंध अभागी' क्या कर सकता है? स्पष्ट शब्दों में समझिये कि जो स्वयं अनन्त भुजावतार है, उनके आगे दो भुजधारी अज्ञानी अंधे की बिसात ही क्या है?

दूसरी जगह के एक सत्संगी सज्जन ने देखा कि एक दुष्ट अपने हाथ में हथियार लिये महर्षि जी की ओर जा रहा है। बस क्या था, वो दौड़कर महर्षि जी के निकट आ खड़े हुए। ऐसी परिस्थिति में वह दुष्ट पुनः अपनी कला में असफल हो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उधर से मुड़कर दूसरी ओर चला गया। उनका बाल-बांका न कर सका।

मुझे ऋग्वेद का मंत्र स्मरण हो आता है, उसमें लिखा है—

" किं नूनमस्मान्कृणा वदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य'॥
(वेद दर्शन योग पृ० २३)

अर्थात हे अमृत स्वरूप! शत्रु निश्चय से हमारे प्रति क्या कर सकता है? कुछ नहीं। और मनुष्य का हिंसा-स्वभाव भी विद्वान ब्रह्मचारी का कुछ नहीं कर सकता।

जो कुछ भी हो, संतगण सदा कष्टों को झेलते हुए भी जग कल्याण करते रहे हैं। श्री महादेव जी श्री पार्वती से कहते हैं—

उमा संत असन्ह कर इहै बड़ाई।
हानि करत जा करत भलाई॥"

—राम चरित मानस।

और भगवान श्री राम भरत जी से कहते हैं—

" संत असन्तन्ह कै असि करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥

काटइ मलइ परम सुनु भाई ।
निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥"

रा० च० मा०

अंत में, स्वामी श्री शुद्धानंद जी भारती के शब्दों में हम कह सकेंगे—

"संत ही भारतवर्ष के स्मृतिकार हैं, संत ही उस के कवि हैं, संत ही उसके संदेश-वाहक हैं और संत ही उसकी सन्तान को प्रेम, ज्ञान और शान्ति का पाठ पढ़ाने वाले हैं। उन संतों को हमारा बार-बार प्रणाम है।

संत की मानव जाति के प्राण हैं, संत रूपी पादप के अमृत फल हैं, संत ही स[illegible] सम[illegible] प्रकाश देनेवाले प्रदीप हैं। वही पाप-ताप से पी[illegible] मानव-जाति को ऊपर उठाने वाली शक्ति है [illegible] सभी जातियों और सभी देशों के [illegible] को हम मस्तक होकर प्रणाम करते हैं।

ओइम् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

पूज्य स्वामी मेंही दास कृत
ईशस्तुति और नाम संकीर्त्तन
की
व्याख्या

व्याख्याकार—महावीर 'संतसेवी'

व्याख्याकार के दो शब्द

बहुत दिनों से सत्संग-प्रेमियों का आग्रह था कि परम पूज्य श्रद्धेय महर्षि मेंहीं दास जी महाराज कृत 'ईश-स्तुति' तथा 'नाम संकीर्त्तन की व्याख्या प्रकाशित हो।

समयाभाव के कारण इन आग्रहों की रक्षा अब तक नहीं हो सकी थी। किन्तु इधर इन आग्रहों का दबाव इतना अधिक हो गया कि इन्हें बिना प्रकाशित किये रहा नहीं गया।

उक्त कार्य के लिये पूज्य श्री स्वामी जी महाराज की आज्ञा मिलने पर दोनों पदों की व्याख्या मैंने लिख[illegible] और उन्हें दिखलाई भी। उन्होंने इन्हें प्रकाशित क[illegible] वाने की आज्ञा दी और अब ये आपके समक्ष हैं।

आशा है सत्संग-प्रेमी गण इन्हें अपना[illegible] उठावें।

श्री गुरुचरण सरोज कृपाभिलाषी
महावीर 'संतसेवी'

❋ ईश-स्तुति ❋

सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर औरु अक्षर पार में ।
निर्गुण सगुण के पार में सत असत हू के पार में ॥१॥
सब नाम रूप के पार में मन बुद्धि बच के पार में ।
गो गुण विषय पँच पार में गति भाँति के हू पार में ॥२॥
सूरत निरत के पार में सब द्वन्द्व द्वैतन्ह पार में ।
आहत अनाहत पार में सारे प्रपञ्चन्ह पार में ॥३॥
सापेक्षता के पार में त्रिपुटी कुटी के पार में ।
सब कर्म काल के पार में सारे जञ्जालन्ह पार में ॥४॥
अद्वय अनामय अमल अति आधेयता गुण पार में ।
सत्ता स्वरुप अपार सर्वाधार मैं तू पार में ॥५॥
पुनि ओम सोहम् पार में अरु सच्चिदानन्द पार में ।
हैं अनन्त व्यापक व्याप्य जो पुनि व्याप्य व्यापक पार में ॥

...गमहु सब जाओ जो हैं सान्तहु पार में ।
...अखिलेश हैं विश्वेश हैं सब पार में ॥७॥
... चक्र मिलन आवरण सारे पार में ।
... कर ... ठहर धर 'मेंहीं' जावै पार में ॥८॥

...शब्दार्थ — क्षेत्र—शरीर । क्षर—नाशवान । ...—अपरा प्रकृति । परा—परा प्रकृति । अक्षर—...श । भगवद्गीता के अनुकूल तीन पुरुष हैं—क्षर-...ष, अक्षर-पुरुष और पुरुषोत्तम (दे० गीता अध्याय ..., श्लोक १६ और १७) । सत्—अपरि-वर्त्तनशील ...र्थ परा प्रकृति, अक्षर पुरुष, निर्गुण । असत्—...वर्त्तनशील पदार्थ, अपरा प्रकृति, क्षर पुरुष । सापेक्षता —ऐसे दो शब्द जो अत्यन्त ...हों परन्तु उनके अर्थ एक दूसरे के विपरीत ... । ... दिन-रात, अच्छा-बुरा, हर्ष-शोक आदि । ...तरह के शब्दों से नहीं वर्णित होने योग्य गुण ... 'सापेक्षता' के पार में कहलाते हैं । त्रिपुटी—अत्यन्त सम्बन्धित तीन-तीन शब्द । जैसे—भक्ति-भक्त-भगवन्त, ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय, ध्यान-ध्याता-ध्येय इत्यादि । कुटी—स्थान । त्रिपुटी कुटी—त्रिपुटी सम्बन्धित स्थान । आधेयता—अवलम्बित रहने का गुण । ओम्—अनाहत आदिनाद, प्रणवध्वनि, सत शब्द । सोहम्—वह शब्द जिसके मिलने से परमात्मा और अपने में एक तत्त्व होने का ज्ञान होता है । व्यापक—सब में प्रविष्ट और फैलकर रहनेवाला । व्याप्य—जिसमें व्यापक हुआ जाय—प्रकृति । हिरण्यगर्भ—ज्योतिर्मय ब्रह्म, व्यावहारिक सत्ता, ब्रह्मा ।

पद्यार्थ—जो सब शरीरों यानी स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य (जड़विहीन चेतन), सभी नाशवानों, अपरा प्रकृति—निम्नकोटि की प्रकृति—परिवर्त्तनशील दशावाली जड़ प्रकृति—असत्, परा प्रकृति—उच्च कोटी की प्रकृति—अपरिवर्त्तनशील † दशावाली जीव-रूपा‡ चेतन प्रकृति—सत्; इन उभय प्रकृतियों और परिवर्त्तनशील दशा रहित अनाश तत्त्व के परे है । जो त्रिगुण रहित—परा प्रकृति तथा त्रिगुण सहित—अपरा प्रकृति के परे और सत असत् के भी परे है ॥१॥ जो समस्त नाम-रूपों के परे मन-बुद्धि और वचन के परे है, जो पंचेन्द्रियों और पंच विषयों (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) के परे है, चलने या हिलने-डोलने और किसी प्रकार में कहे जाने के भी परे है ॥२॥ जो सुरत की संलग्नता के परे है, सभी द्वैत (प्रपंच) के झगड़ों के परे है, जो ठोकरसे और बिना ठोकर से होनेवाले शब्दों के परे और सारी सृष्टि के परे है ॥३॥ जो सापेक्षता और त्रिपुटी स्थान के परे है, जो सब कर्म और समय के परे है और सभी उलझना-झंझटों के परे है ॥४॥ जो अद्वितीय, रोग-रहित, अत्यन्त पवित्र और अवलम्बित रहने के गुण के परे है, जो स्वरूप से स्थितिवान्, असीम, सबके आधार और मैं-तू के परे है ॥५॥ पुनः जो ओम-सोहम के परे है, सच्चिदानन्द ब्रह्म* के परे है, जो अनन्त, व्यापक और व्याप्य है, फिर व्याप्य और व्यापक के परे भी है ॥६॥ जिससे हिरण्यगर्भ—ज्योतिर्ब्रह्म भी निम्नकोटि का है, जो अन्त सहितों के परे है, (वेही) सबके ईश्वर-प्रभु, सम्पूर्ण जगदादि

† महाभारत शान्ति पर्व, उत्तरार्द्ध मोक्ष धर्म, अध्याय १०४ ।

‡ श्री मद्भगवद्गीता, अध्याय ७, श्लोक ५ ।

* सच्चिदानन्द ब्रह्म और व्यवहारिक सत्ता के विषय में लोक मान्य बाल गंगाधर तिलक महोदय कृत (गीता-रहस्य) (पृष्ठ २११ तथा 'कल्याण' वेदान्त अंक सं० १९९३) पृ० १८७ में देखिये और सत्संग योग भाग–२, पृष्ठ १३५ में और भाग–३, पृष्ठ १३ में भी देखिये ।

के ईश्वर, विश्व के स्वामी सबके परे हैं ।।७।। स्वामी श्री मेँहीं दास जी महाराज कहते हैं कि उस परम प्रभु सर्वेश्वर से मिलने के लिये, सत शब्द यानी चेतन शब्द—प्रणवध्वनि को ग्रहण कर (स्थूल-सूक्ष्मादि सारे (मायिक) आवरणों के पार में उस प्रभु से मिलने को चलो । सद्गुरु के दयामय हस्त के नीचे ठहर कर और उसे धरकर या उसका सहारा लेकर कथित सब आवरणों के पार में जाओगे ।।८।।

नाम संकीर्त्तन

अव्यक्त अनादि अनन्त अजय,
अज आदि मूल परमातम जो।
ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा,
जिनसे कहिये स्फोट है सो ।।१।।
है स्फोट वही उद्गीथ वही,
ब्रह्मनाद शब्दब्रह्म ओम वही ।
अति मधुर प्रणव ध्वनि धार वही,
है परमातम परतीक वही ।।२।।
प्रभु का ध्वन्यात्मक नाम वही,
है सार शब्द सतशब्द वही ।
है सत चेतन अव्यक्त वही,
व्यक्तों में व्यापक नाम वही ।।३।।
है सर्व व्यापिनि ध्वनि राम वही,
सर्व कर्षक हरि कृष्ण नाम वही ।
है परम प्रचण्डिनि शक्ति वही,
है शिव शंकर हरनाम वही ।।४।।
पुनि राम नाम है अगुण वही,
है अकथ अगम पूर्ण काम वही ।
स्वर व्यञ्जन रहित अघोष वही,
चेतन ध्वनि सिंधु अदोष व[...]
है एक ॐ सतनाम वही,
ऋषि सेवित प्रभु का नाम वही ।
मुनि सेवित गुरु का नाम वही ।।
भजो ॐ ॐ प्रभु नाम यही,
भजो ॐ ॐ 'मेँहीं' नाम यही ।।६।।

पद्यार्थ—जो परमात्मा इन्द्रियों को [...] आदि अन्त रहित, अजीत, अजन्मा और सारी [...] का आदि मूल है, उस (परमात्मा) से जो धा[...] प्रथम प्रस्फुटित हुई यानी फूटकर निकली, उस [...] —जड़ प्रकृति से—श्रेष्ठ धारा को स्फोट कहते [...] वही स्फोट है, वही उद्गीथ * है, वही ब्रह्म[...] शब्द-ब्रह्म और ओ३म भी वही है । वही अत्यन्त सुरीली प्रणवध्वनि की धारा है और वही पर[...] की प्रतिमूर्ति है ।।२।। वही परम प्रभु सर्वेश्वर का ध्वन्यात्मक नाम, सार शब्द और सत् शब्द है । वह सत चेतन, अप्रत्यक्ष (इन्द्रियों से नहीं जानने योग्य) है और वही सब इन्द्रियों से जानने योग्य पदार्थों में व्यापक (प्रभु) नाम है ।।३।। वही सब में रमन करने वाली सर्वव्यापिनी रामध्वनि है तथा वही सबको आकृष्ट करनेवाला हरि और कृष्ण नाम है । वही परम प्रचण्डिनी शक्ति है; कल्याणकारक, क्लेशों को हरने वाला नाम भी वही है ।।४।। फिर निर्गुण रामनाम

* उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च । अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनि मुक्ताः । ७ ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद्, अ० १ ।

अर्थ—उद्गीत (उद्गीथ) (अर्थात् ॐ) परब्रह्म है । इसमें तीन सुप्रतिष्ठित अक्षर (अ, उ, म) हैं । ब्रह्मज्ञानी लोग भीतरी हालत (रहस्य या गुप्त भेद) जानकर ब्रह्म में लीन होते हैं । (अर्थात, ॐ—उद्गीथ में लीन हो जाते हैं) ।

[illegible] निर्वचनीय, बुद्धि के परे, सभी [illegible] करनेवाला नाम है। वही स्वर [illegible] त नहीं किये जाने योग्य है † [illegible]ी निर्दोष--दोष रहित चेतन ध्वनि का समुद्र वही एक ओम सत नाम है और वही ऋषियों [illegible]वित प्रभु का नाम है। स्वामी श्री मेंहीं दास [illegible]राज कहते हैं कि यही ओ३म शब्द प्रभु का [illegible] का [illegible] करो ॥६॥

† अघोषम् अव्यञ्जनं अस्वरं च अकण्ठ ताल्वोष्ठम् अनासिकं च ।
अरेफ जातम् उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित् ॥

अमृतनादोपनिषद् ।

ओ३म, स्फोट या उद्गीथ के विषय में सत्संग योग (द्वितीय संस्करण) भाग–२, पृष्ठ १७२ में स्वामी विवेकानन्द जी महाराज के तथा भाग ३, पृष्ठ २६ में स्वामी भूमानन्द जी महाराज के वचन पढ़कर देखिये ।

संत कबीर की सहज सामाधि

संतो सहज समाधि भली है ।
जबसे दया भई सतगुरु की, सुरति न अनत चली है ॥टेक॥
जहँ-जहँ जाऊँ सोइ परिकरमा, जो कछु करौं सो पूजा ।
घर बनखंड एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा ॥१॥
शब्द निरन्तर मनुवा राचा, मलिन वासना त्यागी ।
जागत-सोवत, उठत-बैठत, ऐसी तारी लागी ॥२॥
आँख न मूँदूँ, कान न रूँधूँ, काया-कष्ट न धारूँ ।
उघरे नैयन साहब देखूं, सुंदर बदन निहारूँ ॥३॥
कहहिं कबीर यह उन्मनि रहनी, सो परगट कहि गाई ।
दुख-सुखके वह परे परम, पद सो पद है सुखदाई ॥४॥

वित हो। इस योग में सदाचार पूर्वक जीवन और निरन्तर अभ्यास चाहिए। इसीलिये सन्तमत के उपदेष्टा मांसादि तमोगुणी भोजन, नशे, भोग-विलास के विरुद्ध हैं। उपनिषद् भी कहती है :—

नाविरतोदुश्चरितान्ना शान्तो नासमाहितः
नाशान्ते मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं और जिसका चित्त असमाहित् या अशांत है वह इसे आत्मज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ २४ ॥

वेद-मन्त्र के चौथे टुकड़े में बताया कि "सब भुवन उसी में स्थित हैं। सब सृष्टि का वही आधार है। अर्थात् वह सर्वव्यापक है। सर्वव्यापक निराकार ही हो सकता है। बिना सूक्ष्मातिसूक्ष्म हुए सबमें समा नहीं सकता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व निराकार ही रहेगा। ईश्वर सब लोकों को व्यापक होकर धारण कर रहा है, जैसे हमारा जीव हमारे शरीर को। जैसे हम घटादि मठादि पदार्थों को उठाते इस प्रकार ईश्वर सृष्टि को धारण नहीं किये हुए हैं। ऐसा हो तो ईश्वर का अस्तित्व सृष्टि से प्रथक् रहेगा और साकार होगा। और साकार पदार्थ सावयव से अनित्य रहेगा और सर्वज्ञ नहीं होगा। अतः का प्रतिपादित निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वाधार चिदानन्दमय भगवान् ही सन्तों का अभीष्टदेव है। सन्तों की विशेषता यह है कि वे स्वानुभूत बात कहते हैं और विद्वान् लोग शास्त्र के आधार पर उपदेश करते हैं। शास्त्र और सन्तों का अनुभव एक है; यह प्रकट करना उसी का काम है जो "श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ" दोनों प्रकार से योग्य हो। विद्वान् भी हो योगी भी। श्रीकृष्ण, स्वामी दयानन्द जैसे महापुरुष इसी कोटि में आते हैं। पहुँचे तो परिणाम में सगुणवादी भी इसी परिणाम पर हैं—

प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना,
प्रेम से प्रकट होहिं भगवाना ॥
[गोस्वामी तुलसीदास]

महात्मा मेंहीँ परमहंस जी ने अपनी पुस्तक में सन्तों की अनुभूति और वेद का समन्वय करके कालान्तर से बिछुड़े सन्तमत और वैदिक धर्म को एक कर दिया है।

महात्मा जी की वाणी [शब्द] का भी अध्ययन किया, सब में अन्तरानुभूति प्रकट हो रही है। वर्त्तमान में हमारा देश भौतिकता की ओर बढ़ता जा रहा है। ऐसे समय में वैदिक आध्यात्मिकता गुरुडम और ढोंग से रहित अन्तर्मुखी वृत्ति बनाने वाले उपदेशों की बड़ी भारी जरूरत है। महात्मा मेंहीँ परमहंस जी और उनके भक्त श्रीविश्वानन्द जी, श्री उदित नारायण चौधरी, प्रोफेसर महेश्वर प्रसाद-सिंह जी, श्री हुलासचन्द्र रूंगटा जी आदि इसी आवश्यकता को पूर्ण कर रहे हैं। भौतिक अन्वेषण के साथ यदि आध्यात्मिकता का पुट भी रहेगा तो कल्याण होगा। चेतन बिना जड़ निर्जीव है मुर्दा है। माया में डूबने से ब्रह्मशरण गति ही बचा सकती है।

दैवीह्येषागुणमयी मममायादुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्तिते ॥
[गीता]

[साप्ताहिक "आर्य्यमित्र" से साभार उद्धृत]

"जीवन बिताओ स्वावलम्बी"

महावीर 'संतसेवी'

हाथरस में एक परम विरक्त संत हो गये हैं, जिनका नाम था—तुलसी साहब। उनका इस अवनी-तल पर आविर्भूत होना कब और कहाँ हुआ, अज्ञात है; किन्तु सर्वसाधारण को इतना ज्ञात अवश्य है कि वे हाथरस के किले की खाई में रहा करते थे और स्थानीय शहर से मधुकरी-वृत्ति करके अपना काल-क्षेपण किया करते थे। उनकी मधुकरी भी विचित्र थी। सप्ताह में छः दिन तो वे रोटी का भिक्षा-करण करते और सातवें दिवस मट्ठे का। ऐसा वे इसलिये करते कि छः दिनों की बची-खुची रोटियों के टुकड़े जो भोजनोपरान्त बच जाते, उन्हें वे एकस्थ करके रखते और सप्तम दिवा उसी में मट्ठे मिलाकर वे भोजन कर लिया करते और निश्चिन्त होकर अहर्निश परमात्म-चिन्तन में लीन रहा करते। संत कबीर ने बड़े मजे में कहा है—

"पाँचो कुतिया राम की, करत भजन में भंग।
इनको टुकड़ा डारिके, भजन करो निःशंक॥
चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआँ बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिये, सोई शाहंशाह॥"

'न ऊधो का लेना, न माधो का देना' की भाँति उनको किन्हीं से कुछ लेना-देना नहीं था। एतदर्थ उनको अन्य किसी से विशेष सम्पर्क नहीं था। संयोगवश एक दिन एक धर्मनिष्ठ मुंशी जी को उनके दर्शन हुए। वर्षा के कारण जब खंदक में पानी हो गया तो उक्त मुन्शी जी ने बहुत अनुनय-विनयकर उनको अपने घर ले जाकर यथायोग्य सेवा की। वर्षावास के पश्चात् वे पुनः स्वस्थान को लौट आये।

मुन्शी जी के सुपुत्र का नाम था—मुन्शी महेश्वरी लाल जी। उनको कोई सन्तान नहीं थी। सन्त-प्रवर तुलसी साहब जी महाराज के आशीर्वाद से उनको एक पुत्र-रत्न हुआ, जिनका नाम 'देवी प्रसाद' पड़ा। जब इनकी अवस्था चार वर्ष की हुई तब तुलसी साहब ने उनके मस्तक पर अपना वरद हस्त रखकर शुभाशीष दी। फलस्वरूप आगे चलकर वे भी 'बाबा देवी साहब' नाम से एक प्रसिद्ध महात्मा हुए। आपके सिद्धान्त का सार था-परमात्म-भजन करना, सदाचारी बनना तथा (Self supports) अर्थात् स्वोपार्जन कर जीवन व्यतीत करना। आपका कहना था कि 'जो बिना परिश्रम किये, दूसरे के पसीने की कमाई खाता है, वह दूसरे का खून खाता है, वह वैष्णव नहीं है। आप स्वावलम्बी बनने पर बहुत जोर दिया करते थे और घूम-घूमकर लोगों में सद्-ज्ञान की शिक्षा-दीक्षा का प्रचार किया करते थे।

सन् १९०९ ई० में आपके एक प्रमुख शिष्य मेँहीँ परमहंस जी महाराज हुए। जो आज पूर्ण शरदिन्दु के सदृश अपने ज्ञानालोक से भारत ही नहीं, अपितु अखिल विश्व को आलोकित कर रहे हैं। आपने साम्प्रदायिक मत-मतान्तर के झगड़े को मिटाया और बतलाया कि विभिन्न पंथ, धर्म, सम्प्रदाय और मजहब आदि कहकर जो अपने को भिन्न-भिन्न घोषित करते हैं, यथार्थ में वे सभी अभिन्न—एक हैं। जैसे भिन्न-भिन्न देशों में विभिन्न रंगों एवं

विभिन्न आकारों की गायें होती हैं, किन्तु सभी गायों के दूध का रंग अभिन्न—उज्ज्वल ही होता है। उसी तरह भिन्न-भिन्न देशों एवं भिन्न-भिन्न जातियों में सन्तों के अवतीर्ण होने पर भी सबका ईश्वर-ज्ञान एक है। सबका ईश्वर एक है, चाहे उसे गॉड (God) अल्लाह वा ब्रह्म जो कहो। भिन्नता केवल बाह्य-प्रदर्शन में है। 'भिन्न-भिन्न काल तथा देशों में संतों के प्रकट होने के कारण तथा इनके भिन्न-भिन्न नाम-करण होने के कारण सन्तों के मत में पृथकत्व ज्ञात होता है; परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातों को तथा पंथाई भावों को हटाकर विचारा जाय और सन्तों के मूल और सार विचारों को ग्रहण किया जाय, तो यही सिद्ध होगा कि सब सन्तों का एक ही मत है।'

आपने सब सन्तों की एक स्तुति बनाई है—'सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी'...इस स्तुति के द्वारा सभी मत के साधु-सन्तों के पंथाई एवं साम्प्रदायिक सम्बन्धी पारस्परिक वैमनस्य भाव मिटकर सामञ्जस्य की प्रस्थापना होती है।

आप भगवान् बुद्ध की नाईं मनुष्य मात्र को पंचशील पालन अर्थात् झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा देकर परमात्म-भक्ति की ओर उन्मुख करते हैं। साथ ही, स्वयं स्वावलम्बी जीवन-यापन करते हुए अन्यों को स्वावलम्बी बनने की अविराम प्रेरणा करते रहते हैं। हैं। आपके गृहस्थ और विरक्त दोनों प्रकार के शिष्य हैं, अपनी-अपनी योग्यतानुसार जीविका कर जीवन व्यतीत करते हैं। आपकी सर्वसाधारणजन के लिये यही शिक्षा है कि सदाचार समन्वित हो परमात्म-भक्ति करो, पर भाग्योपजीवी मत बनो, स्वयं श्रम करके जो उपार्जन कर सको, उससे अपना एवं अपने परिवार का पालन पोषण करो और अपने शक्त्यानुसार तन, मन और धन से दूसरों की सहायता करो। तुम सिंह की तरह पुरुषार्थ कर स्वावलम्बी जीवन बिताओ, लँगड़ी लोमड़ी की तरह प्रमादी और परमुखापेक्षी मत बनो।

"साध सिंह का एक मत, जीवत ही को खाय।
भावहीन मिरतक दशा, ताके निकट न जाय॥

एक लघुकथा है कि—एक सेठ ने अपने वयस्क पुत्र को प्रमादी देखकर उसे वाणिज्य-व्यापार के लिये थोड़ी पूंजी दी। सेठपुत्र ने अल्प दिन में विशेष धनवान होने की आकांक्षा से नेपाल राज्य की यात्रा की। मार्ग में अनेक जङ्गल, गिरि एवं सरिताओं को पार करता हुआ वह एक घनघोर कानन में जा पहुँचा, जहाँ मानव के स्वास मात्र की भी गति नहीं थी। वह दुस्साहस कर आगे बढ़ ही रहा था कि बड़ी तीव्रता से दहाड़ता हुआ एक सिंह को कानन-कुंज के एक भाग से दूसरे भाग में प्रवेशित होते देखा। देखते ही उसका दिमाग सुन्न पड़ गया, बदन पसीने-पसीने हो गया और डर से थर-थर काँपने लगा। फिर भी अपने प्राणरक्षार्थ येनकेन प्रकारेन वह एक पेड़ पर चढ़ा। इतने में उस मृगेन्द्र ने एक मृग की मृगया कर उसे घसीटता हुआ एक माँद के समीप लाया और इच्छापूर्ण भोजन कर अपना रास्ता लिया। पश्चात् वहीं से एक लँगड़ी लोमड़ी निकली और केहरी के उच्छिष्ट को खाकर वहीं एक झाड़ी में बैठ गई।

सेठपुत्र यह सारा तमाशा देख रहा था। उसने सोचा—जब कि परमात्मा एक लँगड़ी लोमड़ी पर्यन्त को भरपेट भोजन देता है, तो क्या वह मुझे नहीं

देगा ? जो मैं अपना घरबार छोड़ अपनी जान हथेली में ले जंगल-पहाड़ का खाक छानने चला। ऐसा विचार कर उसने निज घर की राह ली और घर पहुँच अपने पूज्य पिता के श्री चरणों का अभिवादन कर मार्ग की घटना कह सुनाई। पिता ने कहा—प्रियवत्स ! तुम परम पिता (परमात्मा) के निर्देशन को यथार्थतः हृदयंगम न कर सके। तुमने अर्थ का अनर्थ समझ लिया। बेटा ! परमात्मा ने तुम्हें लँगड़ी लोमड़ी बनने की नहीं, कर्मठ कर्मयोगी केहरी बनने की सीख दी। स्वयं कमाओ, खाओ और बचे हुए को लूले-लँगड़े के लिये छोड़ दो।

सन्तमत की भी यही शिक्षा है। हमें इस बात की अभिज्ञता होनी चाहिये कि संत कबीर साहब ने कभी भी भिक्षा-वृत्ति नहीं अपनाई और न गुरु नानक देव ने ही। संत कबीर साहब स्वयं ताना बीना करते और उससे जो कुछ उन्हें मिल जाता, उसी में वे संतुष्ट हो प्रसन्नता पूर्वक रहते। उन्होंने अपने लिये जो दृढ़ सिद्धान्त रखा था कि "मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तन के काज" इसका उन्होंने अक्षरशः पालन किया तथा अन्यों के लिये उनकी शिक्षा थी–

"माँगन मरन समान है, मत कोइ माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥"

संत कबीर साहब बहुत बड़े संतोषी थे अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि संतोष के स्वरूप ही थे। अपनी सच्ची कमाई से उन्हें जो कुछ मिल जाता, उसी में वे अपना जीवन-निर्वाह कर लिया करते। वे कहते—

"खुश खाना है खीचड़ी, माँहिं पड़ा टुक लोन।
मांस पराया खायकर, गला कटावे कौन॥
रूखा सूखा खायकर, ठण्ढा पानी पीव।
देख बिरानी चूपड़ी, मत ललचावे जीव॥"
कबीर साईं मुझको, रूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ, (कहूँ) रूखी छीनिन लेय॥"

(कबीर साहब)

महान् संत दादू दयाल जी महाराज स्वयं जंगल जाकर लकड़ी चुन लाते थे और 'कर गुजरान गरीबी में, मन लागल राम फकीरी में' को चरितार्थ करते थे। ऐसी ही गाथा हम संत रविदास और संत सजन दास आदि महात्माओं की पाते हैं कि उन लोगों ने भी स्वोपार्जन कर ही "रूखा-फीका गम का टुकड़ा बासी और अलोना क्या रे" की कुछ भी चिन्ता नहीं कर जीवन-यापन किये। भगवान् बुद्ध और भगवान् शंकर ने यदि भिक्षाटन कर उदर भर अन्न लिया ही तो उसके बदले में उन्होंने संसार को जिस जिस सत्यज्ञान की अमूल्य निधि प्रदान की, उसका मूल्यांकन कौन कर सकता है ? साथ ही, भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

"न तेन भिक्खु (सो) होति यावता भिक्खते परे।
विस्सं धम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता" ॥११

—धम्मठवग्गो, धम्मपद

अर्थात् दूसरों के पास जाकर भिक्षा माँगने मात्र से भिक्षु नहीं होता, (जो) सारे (बुरे) धर्मों (कामों) को ग्रहण करता है (वह) भिक्षु नहीं होता।

और भी देखिये—

"सेय्यो अयो गुलो भुत्तो तत्तो अग्गि सिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो" ॥१३॥

—धम्मपद, निरयवग्गो

अर्थात् असंयमी, दुराचारी हो राष्ट्र का पिण्ड

[शेषांश पृष्ठ ६५ पर]

पूज्य बाबा नन्दन जी महाराज की जीवनी

सुशीला देवी भटनागर

संसार में मनुष्य का जन्म ईश्वर का भजन करने के लिये हुआ है परन्तु संसार के मायारूपी प्रलोभनों में फंस कर वह अपने वास्तविक ध्येय को भूल जाता है, यही नहीं, जिस समय वह संसार में आता है इकरार करके आता है कि "प्रभु! मुझे इस दुख से निकाल, मैं तेरा भजन करूंगा।" परन्तु संसार में आकर वह सब भूल जाता है। और संसार के प्रलोभन उसको प्रभु से दूर हटा देते हैं! ऐसे ही प्राणी भवसागर में डूबते-उतराते रहते हैं और नाना प्रकार के दुःख भोगते रहते हैं, परन्तु वह दयामय, वह दयालु प्राणियों को दुःख में डूबते हुए नहीं देख सकता, वह उनका उद्धार करने के लिये संसार में महान् आत्माओं को भेजता है, जो अपने उपदेशों द्वारा भूले भटके प्राणियों को सत्य पथ का उपदेश देकर उनकी सोयी हुई आत्मा को जगा कर ज्ञान की ज्योति दिखा देते हैं। ऐसी ही महान् आत्माओं में से एक महान् आत्मा पूज्य बाबा नन्दन जी महाराज की भी थी, जिन्होंने अनेकों सोये हुए प्राणियों को ज्ञान की ज्योति दिखाकर सत्य का उपदेश दिया।

बाबा नन्दन जी महाराज के प्रपितामह गुलाब सिंह जी साहब जाति के भटनागर कायस्थ तथा सरकारी वकील थे। इनके पुत्र हरदेव सहाय जी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

हरदेव सहाय जी परम संत पूज्य बाबा देवी साहब जी महाराज के भक्त थे तथा मुरादाबाद कानूनगायान मोहल्ला के रहने वाले थे। हरदेव सहाय जी तथा उनकी पत्नी अक्सर बाबा साहिब की सेवा में आते रहते थे। उनकी पत्नी सन्तान न होने के कारण दुखित रहती थीं। किसी ने कहा है--

सन्तन से माँगे नहीं, घट-घट जानन हार।
जीव दया हिरदय बसे, नाहक करे विचार॥

सुनते हैं कि एक बार बाबा साहब ने उनसे कहा कि दुखित क्यों होती है, तेरे तीन पुत्र होंगे, उनमें से एक हमें दे देना! संतों की कृपा से क्या कुछ असम्भव है समय पाकर हरदेव सहाय जी की पत्नी के तीन पुत्र हुए—रघुवीर सहाय, रघुनन्दन प्रसाद तथा नन्नू मल। यही रघुनन्दन प्रसाद ही पूज्य बाबा नन्दन जी हुए! इनकी माता जी ने तीनों पुत्रों को बाबा साहब की सेवा में उपस्थित किया। पूज्य बाबा साहब ने इनमें से बाबा नन्दन ज़ी को ही चुना। सच है "हीरे की परख जौहरी को ही होती है"।

बाबा नन्दन जी का जन्म लगभग सन् १८८५ ई० तथा सम्वत् १९४२ में हुआ था। यह बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। सच है "होनहार बिरवान के होत हैं चीकने पात"। ये अपने वर्ग में सदा सर्व-प्रथम होते रहे। स्पेशल अंग्रेजी लेकर मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्ण हो मुख्तारगिरी की परीक्षा दी। उसके पश्चात् इन्होंने बन्दोबस्ती सर्विस भी की।

इसी बीच में इनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। माता-पिता के स्वर्गवास होने के कारण इन्हें वैराग्य हो गया और यह स्थायी रूप से बाबा देवी साहब की सेवा में आकर उनकी सेवा करने लगे। (हाँ, यह लिखना रह गया कि जिस समय बाबा नन्दन जी की माता ने बाबा साहब को बाबा नन्दन जी को दे दिया तो बाबा साहब ने उनसे कहा कि इसको पाल-पोस कर बड़ा कर दो फिर, मुझे दे देना। तब बाबा नन्दन जी दिन में बाबा साहब के पास रहते थे और रात्रि को बाबा साहब उनकी माता जी के समीप छोड़ आते थे।)

बाबा साहब को इनसे बहुत प्रेम था परन्तु, साथ-साथ वह इनको मीठी झिड़की भी दे देते थे। एक बार इनको किसी कारण से इतना डाँटा कि ये उनको छोड़कर भाग गये, परन्तु गुरु का प्रेम चुम्बक की तरह होता है, जो अपनी तरफ खींचता है। ये गुरु-वियोग नहीं सह सके और तुरन्त मुरादाबाद गुरु की सेवा में आ गये।

बाबा नन्दन जी कहते थे कि गुरु की ताड़ना ने ही मुझे इस योग्य बनाया। उन्होंने ठीक लिखा है "गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ विचारे गढ़-गढ़ चोट लगाता रे। अन्तर हाथ सहारा देकर बाहर चोट लगाता रे।।"

इस प्रकार परम संत बाबा देवी साहब जी जैसे सद्गुरु ने बाबा नन्दन जी को एक योग्य शिष्य बनाया और अन्त में बाबा साहब के परमधाम सिधारने पर इनको उनके स्थान पर नियुक्त किया गया।

बाबा नन्दन जी महाराज तथा महर्षि मेंहीँ परमहंस जी महाराज यह दो शिष्य ही बाबा देवी साहब जी महाराज के परम भक्त तथा गुरुमुख शिष्य हुए। महर्षि मेंहीँ परमहंस जी महाराज ने बिहार में बाबा साहब की उपदेश रूपी मन्दाकिनी को प्रवाहित किया तथा यू० पी० में बाबा नन्दन जी महाराज ने अपने ज्ञानरूपी उपदेशों द्वारा जनता में ज्ञान की धारा बहायी। बाबा नन्दन जी महाराज ने मुरादाबाद में एक सत्संग आश्रम का निर्माण किया जिसमें उनका निजी धन तथा तन दोनों लगा हुआ है। उन्हीं के अथक प्रयत्न का फल है कि बाबा देवी साहब की समाधि के दर्शन दूर-दूर से आने वाले यात्रियों को होते हैं।

बाबा नन्दन जी महाराज इसी प्रकार जनता की सेवा करते हुए तथा उनको उपदेश देते हुए १६ अप्रेल सन् १६४६ ई० को परम धाम सिधार गये।

बाबा नन्दन जी महाराज के अन्दर वह सब गुण वर्तमान थे जो कि एक महात्मा में होने चाहिये। वे शान्त एवं सरल स्वभाव के थे। शान्ति तो उनमें कूट-कूट कर भरी थी। उनको जो कुछ कहा जाता था, शान्तिपूर्वक सबकी सुन लेते थे। यहां तक कि उनके ऊपर दोषारोपण भी किये गये, परन्तु उन्होंने सबको अपनी शान्ति तथा सहनशीलता द्वारा सहन कर लिया, पर मुख से उफ तक नहीं की। एक बार लक्ष्मी देवी ने उनसे कहा कि सब लोग आपकी निन्दा करते हैं जो सुनकर मुझे बड़ा दुःख होता है। उन्होंने कहा 'पगली निन्दा से कौन बचा है। वे तो मेरी भलाई कर रहे हैं। यह तो सच है कि बड़े-बड़े महात्माओं तक की निन्दा की गई है। कबीर साहब, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस आदि सबको बदनाम किया गया, परन्तु सत्य तो सत्य ही रहता है, उनका कुछ नहीं बिगड़ता।

कुछ निजी अनुभव—

बाबा नन्दन जी के अन्दर वह शान्ति थी जो कि दूसरे मनुष्य को प्रभावित करसके मैं अपना ही अनुभव लिखती हूँ ! जिस समय मैं सर्व प्रथम मुरादाबाद बाबा नन्दन जी के दर्शनार्थ गई थी। मेरे अन्दर बहुत शंकाये थीं क्योंकि मैं आर्य समाजी विचारधारा की थी और गुरु करने के विरोध में थी। मेरे पतिदेव ने मुझसे कहा कि हमारे गुरु महाराज तुम्हारी शंकाओं का समाधान कर देंगे।

जिस समय मैं उनके समीप पहुँची उन्होंने मुझसे कहा "जो कुछ पूछना हो पूछो"। मैं उनसे इतना प्रभावित हुई कि कुछ न पूछ सकी। परन्तु जिस समय उनका उपदेश हुआ तो सच कहती हूँ कि मेरी एक-एक बात का उत्तर मुझे आप ही मिल गया।

निर्लोभता उनमें इतनी थी कि वह किसी से कुछ लेना नहीं चाहते थे। एक बार भन्डारे पर संत सरन जी ने जो रेलवे में मुलाजिम हैं। कुछ चावल व गेहूँ भन्डारे के लिये दिये (क्योंकि वह कन्ट्रोल का जमाना था सब चीजों का मिलना दूभर था) जब वह जाने लगे तो बाबा जी को भेंट देना चाहा परन्तु बाबा नन्दन जी ने बड़े प्रेक के साथ उसे लौटा दिया और कहा, संत सरन तुमने गेहूँ और चावल देकर हमें बहुत कुछ सुविधा करा दी अब हम और कुछ नहीं लेंगे। यह थी उनकी निर्लोभता !

लक्ष्मी देवी जी अपना अनुभव बताती हैं कि एक बार भन्डारे के अवसर पर प्रसाद के लिये उनसे चने छौंकने के लिये कहा गया। ५० मनुष्यों का प्रबन्ध था और उसी के हिसाब से चने थे। परन्तु आदमी अन्दाज से अधिक आ गये। अब मैं घबराई तो बाबा जी ने कहा कि लक्ष्मी देवी छौंकदो चने जितने भी हैं ऐसी कृपा हुई कि चने सबको बँट भी गये और काफी बच भी रहे।

[शेषांश आगामी अंक में]

जीवन बिताओ स्वावलम्बी

[पृष्ठ ६२ का शेषांश]

(देश का अन्न) खाने की अपेक्षा अग्नि शिखा के समान तप्त लोहे का गोला खाना उत्तम है।

इस सम्बन्ध में महर्षि मेंहीँ परमहंस जी महाराज का कथन है—'साधक को स्वावलम्बी होना चाहिये। अपने पसीने की कमाई से उसे अपना निर्वाह करना चाहिये। थोड़ी सी वस्तुओं को पाकर ही अपने को संतुष्ट रखने की आदत लगानी, उसके लिये परमोचित है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिढ़, द्वेष आदि मनोविकारों से खूब बचते रहना चाहिये और दया, शील, सन्तोष, क्षमा, नम्रता आदि मनके उत्तम और सात्विक गुणों को धारण करते रहना साधक के पक्ष में अत्यन्त हितकर है।

अतएव दृढ़ता से जानना चाहिये कि संतमत लोगों को प्रमादी नहीं बनाता, बल्कि कर्म्मठ कर्म्मयोगी बनने की अविराम प्रेरणा देता है और दुन्दुभि से नादों को निनादित करता है—

"जीवन बिताओ स्वावलम्बी भरम भाँड़े फोड़िकर।
संतों की आज्ञायें हैं मेंहीँ माथ धर छल छोड़िकर॥"

[पृष्ठ ८२ का शेषांश]

मनुष्य अभिनय करता है। कभी वह राजा बन जाता है, कभी वह साधु बन जाता है, कभी वह विष्णु बन जाता है, कभी वह स्त्री बन जाता है इत्यादि भिन्न-भिन्न रूप धारण कर वह रंगमंच पर आकर अपना भिन्न-भिन्न अभिनय दिखला जाता है, परन्तु जब अभिनय समाप्त हो जाता है तब अपना कपड़ा-लत्ता उतार कर, मुँह के पाउडर को धोकर अपना निजका कपड़ा पहन अपने घर चला जाता है। फिर सभी उसको अपने निज के नाम से जानने लग जाते हैं। ठीक इसी प्रकार परमात्मा को भी विशेष काम के कारण विशेष अवतार लेना पड़ता है। कभी वे कच्छप का अवतार लेते, कभी मत्स्य का तो कभी वाराह का, कभी हयग्रीव का तो कभी नरसिंह का, कभी राम का तो कभी कृष्ण का इत्यादि। जैसा गो० तुलसीदास जी लिखते हैं—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ॥

भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैः—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अध्याय ४ श्लोक ७–८

हे अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् अवतार लेता हूँ।

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिये तथा धर्म-स्थापन करने के लिये, युग-युग में प्रकट होता हूँ।

पृथ्वी दुष्टों के भार से अत्यन्त दब गई थी। उसे असीम कष्ट हो रहा था। वह दीन और भय-भीत होकर गाय का रूप धारण कर के आँखों से आँसू बहाती हुई स्वर्ग में पहुँची। फिर देवराज इन्द्र तथा ब्रह्मा को साथ लेकर गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु के पास पहुँची और ब्रह्मा ने उनसे निवेदन किया—दयानिधे! अब द्वापर युग समाप्त हो रहा है। आप भूमण्डल पर पधारें और दुष्ट राजाओं को मार कर पृथ्वी का भार हरण करने की कृपा करें। उन लोगों के अनुरोध पर भगवान् विष्णु को श्री कृष्ण का अवतार लेना पड़ा।

दूसरा दानव महिषासुर हुआ। उसने दस हजार वर्षों तक लोकपितामह ब्रह्मा जी का तप किया और उन्होंने प्रसन्न होकर वर मांगने कहा। महिषा-सुर बोला—देवाधिदेव महाभाग ब्रह्मा जी! मैं अमरत्व चाहता हूँ। पितामह! जिस प्रकार मृत्यु का भय सामने न आये, वैसा ही वर देने की कृपा कीजिये।

ब्रह्मा जी ने कहा—"जन्मे हुए प्राणी का मरना और मरे हुए का जन्म लेना बिल्कुल निश्चित है। अतएव राजन्! एक मृत्यु के विषय को छोड़ कर दूसरा जो कुछ भी तुम्हारे मन में जँचे, वर माँग लो।"

महिषासुर बोला—"पितामह! देवता, दैत्य और मानव–इनमें किसी भी पुरुष से मेरी मृत्यु न हो। कोई स्त्री मुझे मारे। अतएव ब्रह्मा जी! स्त्री के हाथ मेरा मरण निश्चित करने की कृपा कीजिये। पर जो स्वयं अबला है, वह मुझे मारने में समर्थ